इकाई 32 औद्योगिक संबंध

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य
32.1 प्रस्तावना
32.2 सिद्धान्त : हड़ताल या तालाबंदी क्यों होते हैं?
  32.2.1 हड़तालों के रूढ़िवादी तथ्य
32.3 हड़तालों और तालाबंदी में प्रवृत्ति
  32.3.1 कुल विवाद
  32.3.1 हड़ताल और तालाबंदी
32.4 औद्योगिक विवाद की कुछ विशेषताएँ
  32.4.1 सार्वजनिक क्षेत्र
  32.4.2 कारण
  32.4.3 परिणाम
  32.4.4 अवधि
32.5 सारांश
32.6 शब्दावली
32.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ
32.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

32.0 उद्देश्य

इस इकाई में औद्योगिक विवादों के अर्थशास्त्र की जाँच-पड़ताल और इस पर चर्चा की गई है। यह विवादों के विभिन्न पहलुओं संबंधी आँकड़ों की भी जाँच करती है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- हड़ताल और विवाद के अन्य रूपों की आर्थिक व्याख्या के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- भारत में औद्योगिक विवादों की प्रवृत्ति के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- विवादों के कारणों और अवधि को समझ सकेंगे; और
- यह समझ सकेंगे कि सत्तर और अस्सी के दशकों की अपेक्षा अब कम विवाद क्यों होते हैं?

32.1 प्रस्तावना

औद्योगिक संबंधों का अभिप्राय मुख्य रूप से हड़तालों, तालाबंदियों एवं औद्योगिक विवादों के अन्य रूपों और उनके कारणों तथा समाधानों से है। इस इकाई में हम इस समस्या के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर दृष्टि डालने का प्रयास करेंगे। हम इस प्रश्न से शुरू कर सकते हैं कि औद्योगिक संबंध सौहार्दपूर्ण क्यों नहीं हैं? हड़ताल और तालाबंदी क्यों होते हैं? एक साधारण व्यक्ति के लिए यह प्रश्न अत्यन्त ही सरल प्रतीत होता है क्योंकि यदि सर्वत्र संघर्ष जीवन का हिस्सा है तो फैक्टरियों में ऐसा क्यों नहीं हो सकता। वह व्यक्ति ऐसी दलील दे सकता है। किंतु यही सरल उत्तर अर्थशास्त्री को विकट समस्या में डाल देता है।

32.2 सिद्धान्त : हड़ताल और तालाबंदी क्यों होते हैं?

अर्थशास्त्रियों का मत है कि कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश आर्थिक कार्यकलापों में पैरेटो अनुकूलतमता का सरल सिद्धान्त कार्य करता है। इसका निम्नलिखित अभिप्राय है । एक आर्थिक

कार्यकलाप, जो निजी उद्देश्यों (जैसे लाभ) के लिए संगठित किया जाता है और यह सामाजिक अधिशेष के उत्पादन के साथ समाप्त होता है और सामूहिक रूप से अनुकूलतम बन जाता है। साधारणतया, निजी हितों के अपने अनुसरण में लोग स्वत: अपव्ययपूर्ण कार्यकलापों से बचते हैं और सामाजिक संपत्ति का सृजन करते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो हमारे अधिकांश कार्यकलाप इतने समय तक निरन्तर नहीं चलते रहते और अर्थव्यवस्था चरमरा जाती है।

हड़ताल और तालाबंदी, उत्पादन रोकने का चेतनापूर्ण कार्य, होने के कारण अपव्ययपूर्ण है। श्रमिक, हड़ताल करके उत्पादन क्यों रोकते हैं, अथवा नियोजक तालाबंदी की घोषणा करके अस्थायी तौर पर फैक्टरियों को क्यों बंद कर देते हैं जबकि उनका अस्त्वि उत्पादन को बनाए रखने पर निर्भर करता है? यह अत्यन्त ही विरोधाभासी व्यवहार है जिसका कुछ सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण है।

ऐसा प्रतीत होता है कि सौदाकारी की स्थिति विवाद की समस्या और इसी प्रकार के अपव्ययपूर्ण कार्यकलापों को जन्म दे सकती है। उस स्थिति की कल्पना कीजिए जब एक माता-पिता आइसक्रीम का एक कप खरीदते हैं तथा अपने दो बच्चों को उसे बाँटकर खाने को कहते हैं। हम देख सकते हैं कि जब तक उनमें समझौता होता है आधी आइसक्रीम पिघल चुकी होती है जो कि पैरेटो अनुकूलतमता का उल्लंघन है।

आइसक्रीम के उदाहरण की भाँति ही एक फर्म का आर्थिक अधिशेष श्रमिकों और नियोजकों के बीच सौदाकारी का विषय है। मज़दूरी संबंधी बातचीत में श्रमिक अत्यधिक ऊँची मज़दूरी की माँग से शुरू करता है, जबकि नियोजक अत्यन्त ही कम पेशकश पर अड़ा रहता है। समय बढ़ने के साथ, हम उम्मीद करते हैं कि दोनों पक्ष कुछ रियायत देंगे और समुचित समय के अंदर उनमें समझौता हो जाना चाहिए। किंतु कई बार ऐसा नहीं होता है। बातचीत आगे नहीं बढ़ पाती है तथा कोई भी पक्ष रियायत देने को तैयार नहीं होता है। सामान्यतया ऐसी स्थितियों में, श्रमिक हड़ताल कर देते हैं और/अथवा नियोजक तालाबंदी की घोषणा कर देते हैं।

ऐसा क्यों होता है? इसके दो स्पष्टीकरण हैं जिनका स्रोत प्रसिद्ध ब्रिटिश अर्थशास्त्री सर जॉन हिक्स के निबंधों में है। पहला स्पष्टीकरण यह है कि श्रमिक और नियोजक हड़ताल और तालाबंदी को 'हथियार' के रूप में देखते हैं जिसका उपयोग संघर्ष के समय किया जा सकता है। इतना ही नहीं, इन हथियारों का प्रयोग सिर्फ कभी कभी करना चाहिए ताकि इनके उपयोग करने की गंभीर चेतावनी दी जा सके। दूसरा स्पष्टीकरण असंगत सूचना पर आधारित है। इसके अनुसार दोनों पक्षों को बहुधा एक-दूसरे की क्षमता और रियायत देने की इच्छा के बारे में अलग-अलग बोध होता है। अतएव, प्रत्येक पक्ष इस आशा में कि दूसरा पक्ष झुक जाएगा अडिग रहता है। उदाहरण के लिए एक फर्म में जहाँ लाभ संबंधी सूचना गोपनीय रखी जाती है, यदि श्रमिकों को विश्वास हो जाए कि फर्म ने भारी मुनाफा कमाया है, तो वे अधिक बोनस पर जोर डालेंगे, और यदि उनका विश्वास सही है तो नियोजक को एक सीमा के बाद उनकी बात माननी ही पड़ेगी। किंतु यदि श्रमिकों का विश्वास गलत है तब क्या होगा? नियोजक अभी भी कहेगा कि वह इस तरह की माँग नहीं पूरी कर सकता है किंतु श्रमिक, उस पर विश्वास नहीं करके डटा रहेगा और अंत: नियोजक को हड़ताल स्वीकार करना होगा, क्योंकि उसके पास श्रमिकों को यह विश्वास दिलाने का कोई दूसरा उपाय नहीं है कि बोनस की यह माँग पूरी नहीं की जा सकती।

32.2.1 हड़तालों के रूढ़िवादी तथ्य

विवादों के इन दो सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण के साथ विभिन्न देशों (मुख्यत: पश्चिमी देश) में अर्थशास्त्रियों ने हड़ताल से संबंधित विभिन्न मुद्दों की जाँच का प्रयास किया है। यहाँ अनेक रोचक तथ्यों का उल्लेख किया जा सकता है। पहला, शक्तिशाली श्रमिक संघ और हड़ताल की घटना के बीच स्पष्ट संबंध है। यह सर्वत्र सच प्रतीत होता है और हड़ताल को हथियार के रूप में देखे जाने

की हिक्स की दलील की पुष्टि करता है। दूसरा, जब अर्थव्यवस्था में तेजी रहती है तब अधिकांश हड़तालें होती हैं। श्रमिक यह विश्वास करते हैं कि जब व्यवसाय अच्छा चल रहा है तो उन्हें अधिक मिलना चाहिए। इसके विपरीत, मंदी के समय में श्रमिकों को अपनी नौकरी छूटने की अधिक चिन्ता होती है और इसलिए वे अधिक मज़दूरी की माँग स्थगित रखते हैं। यदि हम असंगत सूचना तर्क की दृष्टि से सोंचते हैं, तब वस्तुस्थिति यह है कि तेजी के समय लाभ के प्रति श्रमिकों की प्रत्याशा और वास्तविक लाभ आँकड़े समरूप नहीं होते किंतु मंदी के समय ऐसा होता प्रतीत होता है। तीसरा, यह भी देखा गया है कि सामान्यतया लम्बी हड़तालों से कम लाभ हुआ है अथवा मज़दूरी में कम वृद्धि हुई है। तुलनात्मक रूप से, अल्पकालिक हड़तालों के परिणामस्वरूप मज़दूरी में अधिक वृद्धि हुई है। यह भी असंगत सूचना दृष्टिकोण से मेल खाता है। मुम्बई में 1982 के प्रसिद्ध कपड़ा हड़तालों में हड़ताल एक वर्ष से अधिक समय तक चली थी किंतु इसका परिणाम श्रमिकों के लिए अत्यन्त ही विनाशकारी हुआ। अंत:, विकासशील देशों में जहाँ अधिक औद्योगिकरण हुआ है (जैसे भारत में) हड़ताल की घटनाएँ विकसित देशों की तुलना में अधिक होती हैं। इसका मुख्य कारण औद्योगिक संबंधों के साथ कार्य करने वाली संस्थाओं का कमज़ोर स्थिति में होना है।

उपरोक्त अंतिम टिप्पणी के संबंध में, भारत की कुछ विकसित देशों जैसे, जापान, नीदरलैण्ड और फ्रांस के साथ तुलना करना रोचक हो सकता है। तालिका 32.1 में, हमने उनका औसत वार्षिक हड़ताल आँकड़ा प्रस्तुत किया है जिसकी गणना अस्सी के दशक के आरम्भ में विभिन्न वर्षों के लिए एकत्र किए गए आँकड़ों से की गई है (समयावधि कोष्ठक में दी गई है)।

तालिका 32.1 : हड़ताल और नष्ट श्रम-दिवस की अन्तरराष्ट्रीय तुलना

देश	हड़तालों की संख्या	कुल नष्ट श्रम-दिवस प्रतिवर्ष (मिलियन)	प्रतिवर्ष प्रति हड़ताल नष्ट श्रम-दिवस
भारत (1980-82)	2055	14.00	6813
फ्रांस (1977-83)	494	0.38	769
बेल्जियम (1980-81)	110	0.20	1818
जापान (1980-82)	5850	0.69	118

स्रोत : विण्डमूलर इत्यादि (1987)

यह उल्लेखनीय है कि भारत के बाद जापान में प्रतिवर्ष (उस अवधि के दौरान) सबसे अधिक संख्या में हड़ताल (5850) हुई थी। नष्ट श्रम-दिवस के मामले में भी भारत के बाद जापान का दूसरा स्थान था; किंतु प्रति हड़ताल आधार पर जापान का स्थान सूची में सबसे नीचे है जबकि भारत प्रति हड़ताल 6813 नष्ट श्रम दिवसों के साथ शेष देशों से कहीं बहुत आगे है। भारत की खराब स्थिति संभवत: दो तथ्यों के परिणामस्वरूप है : (1) भारत में विवाद निपटाने वाली संस्थाएँ अपेक्षाकृत कम कुशल हैं, और (2) भारत में फर्म अधिक श्रम प्रधान हैं।

इन तथ्यों पर विचार करने के बाद यहाँ यह जोड़ना महत्त्वपूर्ण है कि भारत में विवाद अन्य अनेक कारणों से भी होते हैं जो आर्थिक सिद्धान्त में परिकल्पित बातचीत रणनीति से कहीं भिन्न है। बहुधा हड़ताल प्रबन्धन के कतिपय निर्णयों के विरोध के लिए अथवा कतिपय बुनियादी मामलों के प्रति परिवाद अभिव्यक्त करने के लिए की जाती है। इस तरह का हड़ताल व्यवहार (अर्थात् परिवाद अभिव्यक्त करने के लिए), पश्चिमी देशों में आम रूप से नहीं देखा जाता है किंतु भारत में यह प्राय: होता है।

बोध प्रश्न 1

1) हड़ताल पैरेटो अनुकूलतम कार्रवाई क्यों नहीं हैं, स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) हड़ताल और तालाबंदी की घटना को स्पष्ट करने वाले दो मुख्य सैद्धान्तिक कारणों की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) हड़ताल के बारे में कम से कम दो रूढ़िवादी तथ्यों की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

32.3 औद्योगिक विवादों में प्रवृत्ति

भारत का विशाल औद्योगिक संजाल (Network) होने और उतना ही विशाल श्रम बल होने के कारण यहाँ हड़ताल और तालाबंदी की घटनाएँ निरन्तर होने लगी हैं। भारत में औद्योगिक विवाद का इतिहास बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से शुरू होता है जब विशेष रूप से वस्त्र उद्योग और आम तौर पर औद्योगिक अर्थव्यवस्था महामंदी से बुरी तरह से प्रभावित हुई। वर्ष 1928 में, ऐतिहासिक श्रमिक संघ अधिनियम पारित हुआ था और उसी वर्ष बॉम्बे टेक्सटाइल श्रमिकों ने छः महीनों की लम्बी अवधि के लिए काम ठप कर दिया और उसके बाद 1934 में फिर एक हड़ताल की गई। इस समय तक बॉम्बे, अहमदाबाद और मद्रास में अनेक श्रमिक संघ अस्तित्व में आ चुके थे। सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि मद्रास (टेक्सटाइल) लेबर यूनियन पहला भारतीय श्रमिक संघ था जिसकी स्थापना 27 अप्रैल 1918 को हुई थी। इससे काफी पहले 1890 में श्रमिकों का संगठन 'बाम्बे मिल-हैण्डस एसोसिएशन' की स्थापना हुई थी जो श्रमिक संघ नहीं बन सका था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, उद्योगों के बड़े पैमाने पर विस्तार और सार्वजनिक क्षेत्र के बृहत् उपक्रमों की स्थापना के बाद विवादों की समस्या ने बहु आयामी स्वरूप ग्रहण कर लिया है। पहला, अब बृहत् केन्द्रीकृत यूनियनों जिनका विकास सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विस्तार के साथ-साथ हुआ था द्वारा कार्यान्वित राष्ट्रीय स्तर के हड़ताल देखे गए। दूसरा, राजनीतिक दल श्रमिक संघों का महासंघ बनाए रखना महत्त्वपूर्ण समझते हैं जो सार्वजनिक हित के विभिन्न मुद्दों पर केन्द्र सरकार के साथ

बातचीत कर सकें। तीसरा, अब सरकार न सिर्फ अपने उद्योगों में अपितु निजी क्षेत्र में भी औद्योगिक विवादों को नियंत्रित करने में सक्रिय भूमिका निभा रही है।

औद्योगिक संबंधों की जानकारी रखने के लिए केन्द्र सरकार सभी राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से औद्योगिक विवादों, विशेषकर हड़तालों और तालाबंदी के संबंध में राज्य श्रम विभागों की प्राथमिक इकाइयों और क्षेत्रीय श्रम आयुक्तों (केन्द्रीय) के माध्यम से विस्तृत आँकड़े एकत्र करती है और उन्हें श्रम ब्यूरो में संग्रह करती है। तथापि, विवादों की स्वैच्छिक सूचना पर आधारित, इन आँकड़ों में राजनीतिक हड़तालों अथवा नैतिक समर्थन में की गई हड़तालों को शामिल नहीं किया जाता है। अतएव, व्यवस्थित रूप से कम गणना करने की प्रवृत्ति है।

श्रम ब्यूरो द्वारा प्रकाशित आँकड़ो में कतिपय मुख्य चल (Variables) सम्मिलित होते है जैसे हड़तालों और तालाबंदियों की संख्या, शामिल श्रमिक, नष्ट श्रम-दिवस, दीर्घावधि अथवा अल्पावधि दृष्टि से विवादों का प्रतिशत वितरण, विवाद के कारण और परिणाम (सफलता अथवा विफलता) की दृष्टि से।

32.3.1 कुल विवाद

तालिका 32.2 में, हम कुल विवाद आँकड़ों से शुरू करते हैं (हड़तालों और तालाबंदियों का योग) जो विहंगम दृश्य प्रस्तुत करता है। सबसे पहले यह ध्यान देने योग्य है कि विवादों की समस्या भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कोई नई नहीं है। जैसा कि तालिका में दर्शाया गया है, 1950 में भी, जब नई स्वतंत्र सरकार अपनी नई आर्थिक नीतियाँ तैयार कर रही थी, हमारे उद्योगों में विवादों की काफी घटनाएँ हो रही थीं। वास्तव में 1952 और 1956 में विवादों की संख्या 1996 और 1999 के आँकड़ों से तुलना योग्य है।

वर्षों पश्चात्, नि:संदेह विवाद की संख्या बढ़ी, क्योंकि देश विशेषकर उद्योग और श्रम के मामले में अनेक महत्त्वपूर्ण नीति प्रणालियों से होकर गुजरा। जैसा कि तालिका द्वारा दर्शाया गया है, साठ के दशक के उत्तरार्द्ध से अस्सी के दशक के आरम्भ तक 1976, आपातकाल वर्ष, को छोड़कर विवाद की संख्या बहुत अधिक थी। अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध से विवादों में कमी आई है और नब्बे के दशक के उत्तरार्द्ध में विवादों की संख्या उतनी ही कम थी जितनी की पचास के दशक के आरम्भ में। यह तस्वीर रेखाचित्र 1 में सत्त् टाइम सीरीज़ (समय शृंखला) आँकड़ों के साथ दर्शाई गई है। यदि हम 1976 का वर्ष छोड़ दें, तब विवादों की संख्या से घंटे की आकृति का एक सुंदर वक्र बनता है। इसका अभिप्राय यह है कि घटना की दृष्टि से, औद्योगिक परिदृश्य में व्यवस्थित रूप से सुधार हो रहा है। सम्मिलित श्रमिकों की कुल संख्या और कुल नष्ट श्रम-दिवस की दृष्टि से भी यही कहा जा सकता है क्योंकि दोनों में अस्सी के दशक के उत्तरार्ध से गिरावट की प्रवृत्ति है। आकृति 32.1 में भी यदि अस्थिर मध्य भाग को छोड़ दिया जाए तो नष्ट श्रम-दिवस वक्र को भी प्राय: घंटा की आकृति में देखा जा सकता है।

तालिका 32.2 : औद्योगिक विवाद

वर्ष	विवादों की संख्या	सम्मिलित श्रमिक (मिलियन)	नष्ट श्रम-दिवस (मिलियन)	प्रतिविवाद श्रमिक	नष्ट श्रम-दिवस प्रति विवाद	विवाद में प्रति श्रमिक नष्ट श्रम-दिवस
1952	963	0.81	3.34	840	3465	4.12
1956	1203	0.72	6.99	594	5812	9.78
1960	1583	0.99	6.54	623	4129	6.63
1964	2151	1.00	7.73	465	3591	7.72

वर्ष	विवादों की संख्या	सम्मिलित श्रमिक (मिलियन)	नष्ट श्रम-दिवस (मिलियन)	प्रतिविवाद श्रमिक	नष्ट श्रम-दिवस प्रति विवाद	विवाद में प्रति श्रमिक नष्ट श्रम-दिवस
1968	2776	1.67	17.24	601	6212	10.33
1972	3243	1.74	20.54	536	6335	11.83
1976	1459	0.74	12.75	505	8736	17.30
1980	2856	1.90	21.93	665	7677	11.54
1984	2094	1.95	56.03	931	26755	28.75
1988	1745	1.19	33.95	683	19454	28.50
1992	1714	1.25	31.26	731	18237	24.96
1996	1166	0.94	20.29	806	17397	21.60
1999	927		11.10		11974	

स्रोत : भारतीय श्रम सांख्यिकी

यहाँ हमें कुछ महत्त्वपूर्ण प्रेक्षणों पर ध्यान देना चाहिए। पहला, जैसा कि आकृति 32.1 में दर्शाया गया, आपातकाल से पहले और उसके बाद भी (1975 और 1976), विपरीत दिशाओं में होने पर भी विवादों की संख्या ने समान प्रवृत्ति का अनुसरण किया। वर्ष 1970 से 1980 तक (1975 और 1976 को छोड़कर) की अवधि में अधिक घटनाओं वाले वर्ष देखे जा सकते हैं जिसमें 1973 में सबसे अधिक घटनाएँ हुईं (3370 विवाद)। दूसरा, नष्ट श्रम दिवस आँकड़े, यद्यपि कि कुल मिलाकर इसी प्रवृत्ति की पुष्टि करते हैं, बहुत हद तक विशेषकर आपातकाल के वर्षों के पश्चात् लगभग एक दशक तक परिवर्तनशीलता दर्शाते हैं। वर्ष 1984 में प्रसिद्ध बॉम्बे टैक्सटाइल हड़ताल जो 1982 में शुरू हुई और डेढ़ वर्षों तक चली के, परिणामस्वरूप पराकाष्ठा पर पहुँच गए। यद्यपि यह रुख नब्बे के दशक में स्थिर हो गया, फिर भी नष्ट श्रम दिवस, का औसत आँकड़ा काफी ऊपर रहा। यह कम से कम साठ के दशक के मध्य से दोगुना था।

आकृति 32.1 : विवाद और नष्ट श्रम-दिवस

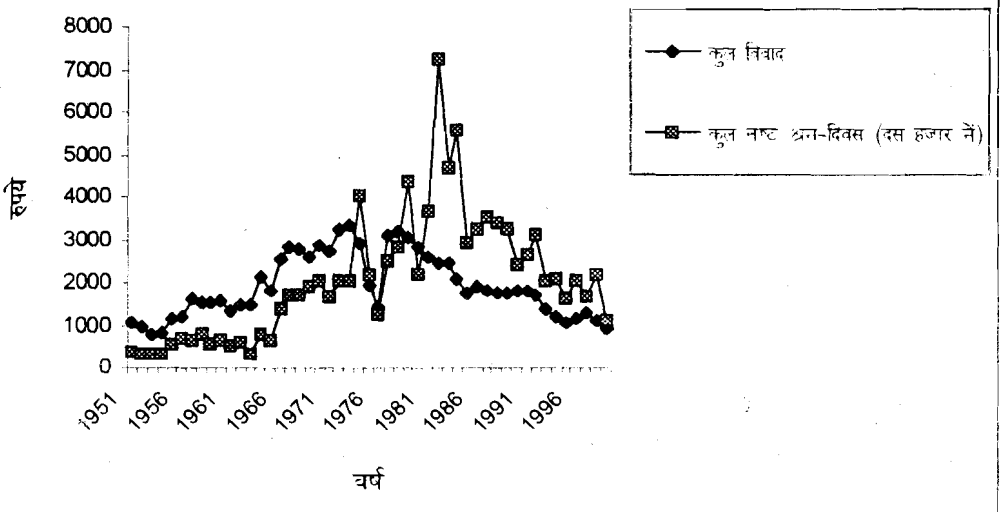

तीसरा, दो वर्गों के बीच असमानता, आपातकालीन वर्षों के दौरान अस्थिरता और पचास तथा साठ के दशकों की तुलना में उनके हाल के स्तर दोनों की दृष्टि से अन्य बातों का पता चलता है। चूँकि

नब्बे के दशक में सम्मिलित श्रमिकों की संख्या साठ के दशक से तुलनीय है, यह दलील दी जा सकती है कि हाल के वर्षों में अधिक श्रम-दिवसों के नष्ट होने का कारण विवादों की लम्बी अवधि था। चौथा, कुल आँकड़ों के विपरीत, प्रति विवाद नष्ट श्रम-दिवसों में बराबर वृद्धि हो रही है, जिसका अर्थ यह है कि प्रत्येक विवाद अधिक मंहगा होता जा रहा है। दूसरे शब्दों में, यद्यपि कि विवादों की संख्या कम है, दिए गए विवाद की लागत में भारी वृद्धि हो गई है। अंत में, हम सभी विवादों से प्रति श्रमिक कुल नष्ट समय (दिए गए वर्ष में) की माप द्वारा समयावधि तर्क को और तीक्ष्ण बना सकते हैं, जो कि तालिका में अंतिम कॉलम में दर्शाया गया है। जैसा कि स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, साठ के दशक की अपेक्षा नब्बे के दशक में औसत श्रमिकों ने 2.5 से 3 गुणा अधिक श्रम-दिवस नष्ट किया है।

32.3.2 हड़ताल और तालाबंदी

विवाद का प्रवृत्ति इसके एक या दोनों घटकों, हड़ताल और तालाबंदी के कारण है। निम्नलिखित आकृति (आकृति 32.2) और दो तालिका (तालिका 32.3 और 32.4) में इसका पता लगाते हैं।

तालिका **32.3** : हड़ताल

वर्ष	हड़तालों की संख्या	कुल नष्ट श्रम दिवस (मिलियन)	प्रति हड़ताल श्रमिक	प्रति हड़ताल नष्ट श्रम दिवस	प्रति श्रमिक नष्ट श्रम दिवस
1961	1240	2.969	348	2394	6.87
1964	1981	5.724	442	2889	6.53
1968	2451	11.078	598	4520	7.56
1972	2857	13.748	516	4812	9.32
1976	1241	2.799	443	2255	5.08
1980	2501	12.018	664	4805	7.24
1984	1689	39.957	1022	23657	23.15
1988	1304	12.530	718	9608	13.37
1992	1011	15.132	759	14967	19.72
1996	763	7.818	797	10246	12.84
1999	540	10.6	–	19629	–

स्रोत : भारतीय श्रम सांख्यिकी

कुल विवादों के लिए घंटे के आकार का वक्र, जिसे हमने आकृति 32.1 में देखा, पूरी तरह से हड़तालों के कारण है। विगत दो दशकों से हड़तालों की संख्या और इसके साथ ही सम्मिलित श्रमिकों की संख्या और कुल नष्ट श्रम दिवसों में कमी आई है। वस्तुत:, 1992 तक हड़तालों की संख्या 1961 के स्तर से नीचे गिर गई है, और इसमें और गिरावट आ रही है। दूसरी ओर, तालाबंदियों की संख्या में पूरी अवधि के दौरान बराबर वृद्धि हुई है।

तालिका 32.4 : तालाबंदी

वर्ष	तालाबंदी की संख्या	कुल नष्ट श्रम दिवस (मिलियन)	प्रति तालाबंदी प्रभावित श्रमिक	प्रति तालाबंदी नष्ट श्रम-दिवस	प्रति श्रमिक नष्ट श्रम दिवस
1961	117	1.950	680	16.667	24.52
1964	170	2.001	747	11.771	15.75
1968	325	6.166	629	18.972	30.18
1972	386	6.796	672	17.606	25.93
1976	218	9.947	855	45.628	53.34
1980	355	9.907	675	27.907	41.37
1984	405	16.068	550	39.674	72.15
1988	441	21.417	576	48.564	84.32
1992	703	16.127	690	22.940	33.27
1996	403	12.466	820	30.935	37.71
1999	387	8.900	–	41.860	

स्रोत : भारतीय श्रम सांख्यिकी

आकृति 32.2 : हड़तालें और तालाबंदियाँ

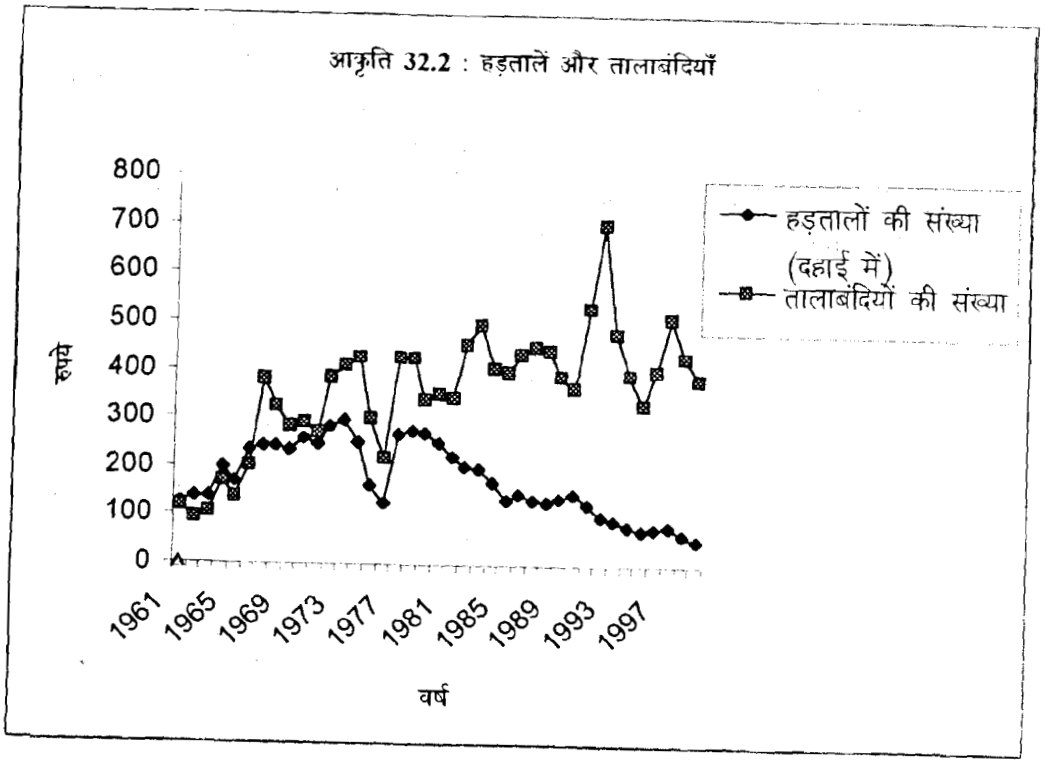

हड़तालों और तालाबंदियों के प्रवृत्तियों में विरोध, आकृति 32.2 में अधिक मुखर है। हम देखते हैं कि 1976 तक दोनों वक्रों की प्रवृत्ति समान रही अर्थात् दोनों ऊर्ध्वगामी थे। वास्तव में, हड़तालों के लिए चरम वर्ष 1973 था (2958 हड़ताल), और लगभग इसी समय 1974 में तालाबंदियों की संख्या नई ऊँचाई पर पहुँच गई और यह 428 तालाबंदी तक पहुँच गई जिसने अगले दशक के लिए निम्न सीमा बाँध दी। तथापि, 1975 में आपातकाल की घोषणा और केन्द्र सरकार द्वारा श्रमिक संघ कार्यकलापों पर सख्त पाबंदी ने हड़तालों और तालाबंदियों दोनों में वृद्धि की प्रवृत्ति को रोक दिया तथा यहाँ तक कि 1976 में इसमें भारी गिरावट आई।

1977 में आपातकाल की समाप्ति पर, हड़तालों और तालाबंदियों दोनों में नाटकीय वृद्धि हुई और इसने आपातकाल पूर्व की गति पकड़ ली। वर्ष 1977 और 1983 के बीच हड़तालों की संख्या सत्त् रूप से बहुत ऊँचे स्तर पर रही। नष्ट श्रम दिवसों संबंधी आँकड़ा भी समान प्रवृत्ति प्रदर्शित करता है। मुख्य रूप से बॉम्बे टेक्सटाइल हड़ताल के कारण यह 1982 में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया और 1978 तथा 1984 के बीच की पूरी अवधि में ऊँचे स्तर पर बना रहा। इस प्रकार, यदि हम 1975 और 1976 के आपात वर्षों को छोड़ दें, तो 1970 से 1984 के बीच की समयावधि को हड़तालों का प्रमुख काल कहा जा सकता है। वर्ष 1984 से, हड़तालों और नष्ट श्रम-दिवसों दोनों की संख्या गिर रही है।

इसके विपरीत, तालाबंदियों का मुख्य चरण 1982 के पश्चात् आरम्भ हुआ। अस्सी के दशक के मध्य में न सिर्फ तालाबंदियों की संख्या में तीव्र दर से वृद्धि हुई अपितु तालाबंदी के कारण नष्ट कुल श्रम दिवस भी हड़ताल के कारण नष्ट श्रम-दिवसों से कहीं आगे निकल गया। 1984 से तालाबंदियों में नष्ट कुल श्रम दिवसों की संख्या हड़ताल के कारण नष्ट कुल श्रम दिवसों से लगभग दोगुना है, यद्यपि कि नब्बे के दशक में दोनों में गिरावट आई। तथापि, यह उल्लेखनीय है कि आर्थिक उदारीकरण के नए युग वर्ष 1992 में सबसे अधिक संख्या में तालाबंदियाँ हुईं, जबकि 1982 में अधिकतम नष्ट श्रम दिवस दर्ज किया गया था। इसी वर्ष हड़तालों में नष्ट श्रम दिवसों की संख्या भी अधिकतम थी।

दोनों प्रकार के विवाद की एक समान विशेषता हड़ताल अथवा तालाबंदी की प्रति इकाई नष्ट श्रम-दिवसों में बढ़ने की प्रवृत्ति है। वर्ष 1996 में एक औसत हड़ताल में 10,246 श्रम दिवस नष्ट हुए जो 1961 में नष्ट श्रम दिवसों का चार गुणा है। तालाबंदी के मामले में भी यही स्थिति है। प्रति इकाई आधार पर, विशेषरूप से हड़ताल में श्रमिकों की भागीदारी भी बढ़ रही है। इतना ही नहीं, एक औसत श्रमिक का हड़ताल अथवा तालाबंदी के कारण अधिक समय नष्ट हो रहा है। इन तथ्यों से पता चलता है कि हड़तालों की संख्या कम होने पर भी कुल नष्ट कार्य समय की दृष्टि से एक औसत हड़ताल अधिक महँगी हो गई है।

बोध प्रश्न 2

1) कुल विवादों में प्रवृत्ति पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) हड़ताल बनाम तालाबंदी में प्रवृत्तियों की तुलना कीजिए। वर्ष 1961 से 1999 तक की पूरी अवधि में उनकी समानता और भिन्नता पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) औद्योगिक विवादों पर उनके प्रभाव की दृष्टि से वर्ष 1976 और 1982 के महत्त्व की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4) सही के लिए 'हाँ' और गलत के लिए 'नहीं' लिखिए।

क) नब्बे के दशक में हड़तालों में वृद्धि हो रही थी। ( )

ख) अस्सी के दशक के आरम्भ से तालाबंदी में वृद्धि हो रही है। ( )

ग) यदि वर्ष 1975 और 1976 को छोड़ दिया जाए तो 1961 से 1999 तक कुल विवादों की संख्या घंटा-आकृति का वक्र बनाती है। ( )

घ) हड़तालों में नष्ट श्रम-दिवसों की संख्या द्वारा हड़तालों की संख्या को विभाजित करके प्रति हड़ताल नष्ट श्रम दिवस निकाला जाता है। ( )

ड.) तालाबंदियों में नष्ट श्रम-दिवसों की संख्या विभाजित करके तालाबंदी में प्रति श्रमिक नष्ट श्रम-दिवस निकाला जाता है। ( )

32.4 औद्योगिक विवादों की कुछ विशेषताएँ

औद्योगिक विवादों में मुख्य प्रवृत्तियों पर चर्चा करने के पश्चात्, अब उनकी कतिपय विशेषताओं जैसे क्षेत्र-वार वितरण (सार्वजनिक और निजी क्षेत्र में), विवादों के कारण और उनके परिणामों इत्यादि पर चर्चा करने का समय है। हम सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में कुल विवादों के विश्लेषण से आरम्भ करते हैं।

32.4.1 सार्वजनिक क्षेत्र

यह प्राय: विश्वव्यापी परिदृश्य है कि सार्वजनिक क्षेत्र में श्रमिक कतिपय अंश में नौकरी सुरक्षा का लाभ लेते हैं। यह मुख्य रूप से सेवाओं और वस्तुओं जिसका सरकार उत्पादन करती है (जैसे रक्षा, प्रशासन, डाक सेवाएँ इत्यादि) के कारण और सरकार पर रोज़गार उपलब्ध कराने के लोकप्रिय दबाव के कारण भी है। भारत में, 1976 में पारित नौकरी सुरक्षा विधान से भी अतिरिक्त अधिशेष उद्‌भूत होते हैं। इस प्रकार नौकरी छूटने के भय से सुरक्षित और जैसा कि उनमें यूनियनवाद है, सार्वजनिक क्षेत्र के श्रमिकों को सामान्यतया सख्त सौदाकारी करने वाला और हड़ताल करने की अत्यधिक क्षमता रखने वाला माना जाता है।

तालिका 32.5 देखने से पता चलता है कि विगत अनेक दशकों से निजी क्षेत्र की तुलना में सार्वजनिक क्षेत्र की विवादों में पड़ने की अपेक्षाकृत सहजता में वृद्धि हो रही है। पहला, विवादों के हिस्से पर विचार कीजिए। अभी भी स्थिति यह है कि अधिकांश विवाद निजी क्षेत्र में होते हैं। वर्ष 1998 में, विवादों में निजी क्षेत्र का हिस्सा 74.20 प्रतिशत था जबकि सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा मात्र 25.80 प्रतिशत था। किंतु परेशान करने वाला तथ्य यह है कि सार्वजनिक क्षेत्र के हिस्से में बराबर वृद्धि हो रही है; वर्ष 1965 में यह हिस्सा मात्र 10.79 प्रतिशत था। यह नाटकीय परिवर्तन अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध में आया।

तालिका 32.5 : विवादों में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा

वर्ष	कुल विवादों में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा	कुल श्रमिक निवेश में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा	कुल नष्ट श्रम दिवसों में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा
1962	11.87	18.20	8.69
1965	10.79	10.31	10.88
1970	15.44	23.99	10.03
1975	18.63	28.09	9.79
1980	33.89	42.04	18.89
1985	22.85	35.70	10.95
1990	34.41	67.61	23.81
1995	32.18	73.28	29.43
1998	25.80	69.89	34.34

स्रोत : भारतीय श्रम सांख्यिकी

श्रमिकों की भागीदारी और नष्ट श्रम-दिवस के मामले में भी इसी तरह का निष्कर्ष निकाला जा सकता है। दोनों मामलों में, सार्वजनिक क्षेत्र अत्यधिक वृद्धि का रुख प्रदर्शित करता है। विशेष रूप से; श्रमिकों की सहभागिता में इसका हिस्सा नाटकीय ढंग से बढ़ा है जो साठ के दशक के मध्य में मात्र 10 प्रतिशत से नब्बे के दशक में 70 प्रतिशत तक हो गया है। इसलिए, समग्र रूप से यद्यपि कि कुल विवादों में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा अभी भी कम है, सापेक्षिक रूप से इसके विवाद में पड़ने की संभावना में वृद्धि की प्रवृत्ति दिखाई पड़ रही है, और विशेष रूप से, विवादों में श्रमिकों की भागीदारी में इसका सापेक्षिक वर्चस्व अत्यधिक है।

तथापि, एक मामले में, सार्वजनिक क्षेत्र निजी क्षेत्र की अपेक्षा बेहतर है। यदि हम प्रति श्रमिक नष्ट श्रम-दिवस की गणना करें तो हम देखेंगे कि सार्वजनिक क्षेत्र में दृश्य कहीं अधिक अच्छा है जो संभवत: यह दर्शाता है कि सार्वजनिक क्षेत्र में निजी क्षेत्र की तुलना में विवाद बहुत ही लम्बे समय तक नहीं चलते हैं।

32.4.2 कारण

अधिक विवाद के क्या कारण हैं? विशेष रूप से विवाद मज़दूरी और भत्तों, बोनस, कार्मिक और छंटनी, अनुशासन, समझौते के उल्लंघन इत्यादि के कारण होते हैं। नि:संदेह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहले तीन कारण हैं। यह रोचक है कि विगत 40 वर्षों में इनके महत्त्व में कोई खास बदलाव नहीं हुआ है। पचास प्रतिशत से अधिक विवाद इन तीन कारणों से हैं यद्यपि कि उनके अंदर भी भिन्नता है। वर्ष 1995 में, मज़दूरी और भत्तों संबंधी माँगों/शिकायतों के कारण 30.9 प्रतिशत, बोनस के लिए 7.6 प्रतिशत, कार्मिक और छंटनी के कारणों से 20.2 प्रतिशत विवाद हुए थे। विगत वर्षों में कार्मिक मुद्दों का सापेक्षिक हिस्सा थोड़ा कम हुआ है।

32.4.3 परिणाम

कौन जीत्ता है और कौन हारता है? जब कभी विवाद समाप्त होता है, हम यह जानता चाहते हैं कि कौन जीता है। उन दृष्टांतों को छोड़ कर जिसमें सबको हानि हुई है (अत्यधिक लम्बे समय तक विवाद चलने और कोई परिणाम नहीं निकलने के कारण), हम विवादों (जो समाप्त हो चुके हैं) का वर्गीकरण परिणाम की दृष्टि से कर सकते हैं कि क्या यह श्रमिकों के अनुकूल हैं अथवा नहीं। यहाँ सामान्यतया चार वर्गीकरण किए जाते हैं : सफल (श्रमिकों को, जो वह चाहते थे मिल गया), आंशिक सफल, असफल और अनिश्चित (जिसका अर्थ है निर्णय का लंबित रहते हुए काम का पुनः शुरू हो जाना)।

हम तालिका 32.6 में देखते हैं कि सफल परिणामों के हिस्से में अधिक बदलाव नहीं आया है। किंतु दो मुख्य परिवर्तन हुए हैं। अनिश्चित परिणामों के हिस्से में भारी कमी आई है (1960 में 25.4 प्रतिशत से 1990 में 3.7 प्रतिशत), और इसके साथ-साथ असफल परिणामों का हिस्सा अत्यधिक बढ़ गया है (1960 में 30.6 प्रतिशत से 1970 में 50.4 प्रतिशत) यह बदलाव सत्तर के दशक के मध्य से स्पष्ट हो जाता है। इन आँकड़ों के आधार पर यह तर्क दिया जा सकता है कि श्रमिकों की सौदाकारी की शक्ति अथवा अनुकूल समझौता कराने की क्षमता महत्त्वपूर्ण रूप से क्षीण हो गई है।

तालिका 32.6 : श्रमिकों की दृष्टि से परिणाम के मामले में विवादों का वितरण प्रतिशत

वर्ष	सफल	असफल	अनिश्चित
1960	33.1	30.5	25.4
1970	34.4	33.4	15.2
1980	27.7	44.6	4.5
1990	22.7	50.4	3.7
1995	40.4	45.7	2.7

स्रोत : भारतीय श्रम सांख्यिकी

32.4.4 अवधि

हमारी चर्चा का अंतिम विषय विवादों की अवधि है। क्या हमारे विवाद अत्यधिक लम्बे समय तक चलते हैं? अत्यधिक लंबे और महँगे विवादों के कई प्रसिद्ध मामले हैं। बॉम्बे टैक्सटाइल मिल हड़ताल डेढ़ वर्षों से भी अधिक समय तक चला था जिसके परिणामस्वरूप अनेक मिल स्थायी तौर पर बंद हो गए। सत्तर के दशक के आरम्भ में, रेलवे श्रमिकों ने लगभग तीन सप्ताह का ऐतिहासिक हड़ताल किया जिससे पूरा राष्ट्र पूरी तरह से ठहर गया था। अभी हाल में, डनलप समूह की एक टायर फैक्टरी में 5 वर्षों से अधिक तक तालाबंदी रही। किंतु इस तरह के उदाहरण कम हैं।

हमारे विवादों में से लगभग आधे पाँच दिनों से अधिक नहीं चलते हैं। वस्तुतः, एक चौथाई विवाद तो एक दिन या उससे भी कम चलता है। अन्य एक चौथाई विवाद एक दिन से पाँच दिन तक चलता है। यह रचना शैली, मामूली अन्तर के साथ, पिछले वर्षों से उल्लेखनीय रूप से यथावत है। तथापि, सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि बड़ी संख्या में विवाद अत्यधिक लम्बे समय तक चलते हैं (30 दिनों तक) और इस संख्या में वृद्धि भी हो रही है। वर्ष 1960 में 30 दिनों से अधिक चलने वाले विवादों का प्रतिशत 7.9 था। किंतु 1970 में यह बढ़कर 13.2 प्रतिशत हो गया त्तपश्चात् 1980 में 18.1 प्रतिशत और 1990 में और अधिक बढ़ कर 24 प्रतिशत हो गया। वर्ष 1995 में इसमें मामूली कमी आई और यह 21.9 प्रतिशत हो गया।

इसलिए इसे अवांछित प्रघटना के रूप में देखा जा सकता है। यद्यपि कि अल्पकालिक विवादों की संख्या ज्यों की त्यों है, मध्यकालिक और दीर्घकालिक विवाद एक दूसरे का स्थान ले रहे हैं। यह विवाद सुलझाने वाली संस्थाओं की कमजोरी प्रदर्शित करता है। किसी भी विवाद को लम्बे समय तक चलने देने से पैरेटो अनुकूलतमता सिद्धान्त, जिस पर हमने आरम्भ में चर्चा की, को आघात पहुँचता है।

बोध प्रश्न 3

1) दो महत्त्वपूर्ण आयामों के संबंध में विवादों में सार्वजनिक क्षेत्र के बढ़ते महत्त्व की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) विवादों के मुख्य कारण क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) विगत वर्षों में श्रमिकों के अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिणामों के मामले में निर्जीव विवादों की संरचना कैसे बदल गई है, चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4) सही के लिए (हाँ) गलत के लिए (नहीं) लिखिए।

क) 1990 के दशक में विवादों में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा 10 प्रतिशत से कम था। ( )

ख) पिछले दशक से हड़तालों में सम्मिलित अधिकांश श्रमिक निजी क्षेत्र से थे। ( )

ग) हमारे एक चौथाई से एक तिहाई तक विवाद मज़दूरी और भत्तों से संबंधित माँगों के कारण हैं। ( )

घ) वर्षों में 30 दिनों से अधिक चलने वाले विवादों के प्रतिशत में महत्त्वपूर्ण रूप से वृद्धि हुई है। ( )

ड.) अधिकांश विवाद निजी क्षेत्र में होते हैं। ( )

32.5 सारांश

भारत में औद्योगिक विवाद, ऐसा प्रतीत होता है कि 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में साधारण स्तर से शुरू होकर सत्तर के दशक के मध्य और अस्सी के दशक के आरम्भ तक अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया और फिर धीरे-धीरे पूर्व स्तर तक गिर कर, एक चक्र पूरा कर चुका है। पचास वर्षों के इस चक्र में दो विशेष व्यवधान बिंदु हैं , 1976 में अचानक गिरावट आई और 1982 में चरम वर्ष (नष्ट श्रम-दिवसों के असामान्य रूप से अधिक होने की दृष्टि से)। तथापि विवादों के परिदृश्य में सुधार पूरी तरह से हड़ताल में गिरावट की प्रवृत्ति के कारण से है जिसने तालाबंदियों में वृद्धिशील प्रवृत्ति को प्रभावी रूप से प्रभावहीन कर दिया है। अस्सी के दशक के आरम्भ में हड़तालों और तालाबंदियों की प्रवृत्ति में परिवर्तन आया। हड़तालों और तालाबंदियों दोनों में एक नकारात्मक विशेषता यह रही कि औसत रूप से दोनों प्रकार के विवादों में श्रम दिवसों की दृष्टि से अत्यधिक हानि हुई।

विवादों के कतिपय अन्य आयाम भी उल्लेखनीय हैं। यद्यपि कि अधिकांश विवाद निजी क्षेत्र में होते हैं, विवादों में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा सत्त् रूप से बढ़ रहा है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि विवादों में सम्मिलित अधिकांश श्रमिक सार्वजनिक क्षेत्र से आते हैं और उनका हिस्सा तेजी से बढ़ रहा है। सामान्यतया श्रमिकों के सामने अधिकतर विवादों के प्रतिकूल निर्णय आ रहे हैं जो शायद उनकी सौदाकारी की शक्ति में कमी का प्रमाण है। यद्यपि कि विवादों की संख्या घटी है, लम्बे समय तक चलने वाले विवादों का अनुपात काफी बढ़ा है जो सरकार के विवाद समाधान तंत्र के लिए चिन्ता का विषय होना चाहिए।

टिप्पणी

इस इकाई में, हमने मुख्य रूप से भारत में औद्योगिक विवाद की स्थिति की समीक्षा की है, और इस प्रश्न से बचने का प्रयास किया है : कौन से समष्टि आर्थिक कारकों ने विवादों की प्रवृत्ति को एक आकृति देने में मुख्य भूमिका निभाई है। यह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, किंतु यह शोध संतोषप्रद उत्तर प्रदान करने के लिए अपर्याप्त है।

यहाँ, हम नई नीति व्यवस्था के प्रादुर्भाव के साथ हड़तालों में गिरावट के संयोग, जो दुर्घटनावश नहीं हो सकता, यद्यपि कि स्वीकार्य रूप से इसकी भी पूरी-पूरी व्याख्या नहीं की जा सकती है, को रेखांकित कर सकते हैं। बॉम्बे टैक्सटाइल मिलों के विनाशकारी अनुभव के बाद, श्रमिक संघों ने सामूहिक सौदाकारी के अपने दृष्टिकोण में कुछ संशोधन किया और 1976 तथा 1982 में औद्योगिक विवाद अधिनियम में स्पष्ट रूप से किए गए नौकरी सुरक्षा उपबंधों के बावजूद भी नौकरी छूटने का भय अधिक वास्तविक हो गया। यह बोध कि कोई भी सरकारी उपाय दिवालियापन को नहीं रोक सकता और न ही सरकार रुग्ण इकाई को अपने हाथ में लेगी, ने श्रमिकों को हड़ताल के प्रति सावधान कर दिया। इसके साथ ही, अर्थव्यवस्था का उदारीकरण हुआ था और चूँकि कतिपय उद्योग इससे काफी प्रभावित हुए थे, इसका कुल प्रभाव यह हुआ कि विकास को बल मिला जिससे आय के अधिक से अधिक अवसर पैदा हुए (हालाँकि रोज़गार में मामूली वृद्धि हुई)। इसने संभवत: श्रमिकों के सहयोगी व्यवहार का मार्ग प्रशस्त किया।

यही सकारात्मक प्रभाव नियोजकों पर भी दिखाई पड़ना चाहिए था। किंतु हम जानते हैं कि नियोजक तालाबंदी के लिए अधिक से अधिक मजबूर कर रहे हैं। यह एक पहेली है। इसकी कुछ व्याख्या है। एक व्याख्या यह है कि तालाबंदी छद्म रूप से बंद किया जाना है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, (1982 से), द्वारा अधिदिष्ट बंद किए जाने पर प्रतिबंध के कारण नियोजक जब वे दिवालियापन के कगार पर होते हैं तालाबंदी का मार्ग चुनते हैं। उदारीकरण के पश्चात् अनेक अकुशल उद्योग रुग्ण हो गए किंतु बहिर्गमन बाधाओं की सुविदित समस्या के कारण (एक इकाई को बंद करने और

परिसमापन में कठिनाई) वे सीधे तालाबंदी कर देते हैं। तथापि, यह मात्र एक व्याख्या है और संभवतया तालाबंदियों की बढ़ती हुई घटना का विवरण नहीं है। इसका उत्तर भावी शोधों से मिल सकता है।

32.6 शब्दावली

पैरेटो अनुकूलतमता : सामूहिक अनुकूलतमता की अवधारणा जो कोई भी अपव्यय नहीं और कुशलता पर आधारित है।

हड़ताल : श्रमिकों द्वारा परिवादों की अभिव्यक्ति अथवा सामूहिक सौदाकारी में लाभ उठाने के सोद्देश्य, बृहत् और संगठित अनुपस्थिति।

तालाबंदी : श्रमिकों की कुछ माँगों को पहले ही हथिया लेने अथवा अपनी सौदाकारी की स्थिति में सुधार करने अथवा घाटा कम करने के लिए नियोजकों द्वारा अस्थायी रूप से बंद किया जाना।

श्रम दिवस : नष्ट श्रम-दिवस हड़ताल (अथवा तालाबंदी) की लागत एक माप हैं। यदि एक फैक्टरी प्रति शिफ्ट 100 श्रमिकों को नियोजित करता है और प्रतिदिन दो शिफ्टों में कार्य संचालन करता है तो एक दिन के हड़ताल से 200 श्रम दिवसों की हानि होगी।

32.7 कुछ उपयोगी ग्रंथ और संदर्भ

केनन, जे. (1986). "दि इकनॉमिक्स ऑफ स्ट्राइक्स", *हैण्डबुक ऑफ़ लेबर इकनॉमिक्स*, वॉल्यूम II, ओ. अशेनफैल्टर और आर. लेयर्ड द्वारा संपादित, एलसेवियर साइंस पब्लिशर्स में।

साहा, बी. और आइ. पैन (1994). "इंडस्ट्रियल डिस्प्यूट्स इन इंडिया : एन इम्पेरिकल एनालिसिस" *इकनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली*, अप्रैल 30।

विण्डमूलर, जे. इत्यादि (1987). *कलेक्टिव बार्गेनिंग इण्डस्ट्रियलाइज़्ड मार्केट इकोनोमीज़ : ए रिएप्रेजल*, इंटरनेशल लेबर ऑफिस, जेनेवा।

स्टैटिस्टिकल पब्लिकेशन्स

इंडियन लेबर ईयर बुक, श्रम मंत्रालय, भारत सरकार।

भारतीय श्रम सांख्यिकी, दि लेबर ब्यूरो।

32.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) हड़ताल पैरेटो अनुकूलतम नहीं है क्योंकि श्रमिक जानबूझकर संभावित अधिशेष अपव्यय करते हैं।

2) दो कारण हैं : (1) हड़ताल और तालाबंदी हथियार हैं;

   (2) असंगत सूचना के कारण श्रमिक (अथवा नियोजक) अधिक मज़दूरी की आशा (अथवा इनकार) करने लगते हैं। विवरण के लिए उपभाग 32.1 पढ़िए।

3) उपभाग 32.1 पढ़िए।

बोध प्रश्न 2

1) अंतिम उपभाग 34.4 में पहला पैराग्राफ पढ़िए जिसमें विवाद प्रवृत्ति का सार संक्षेप प्रस्तुत किया गया है।

2) अस्सी के दशक के आरम्भ तक हड़ताल और तालाबंदी में ही समान रुझान रहा। उसके बाद हड़तालों में कमी आने लगी और तालाबंदी बढ़ने लगी। विवरण के लिए उपभाग 32.2 पढ़िए।

3) वर्ष 1976 में आपातकाल के कारण विवादों की संख्या और विवादों में नष्ट श्रम दिवसों दोनों में अचानक कमी हुई। इसके विपरीत, 1982 में विवादों में असामान्य रूप से अधिक और अधिकतम नष्ट श्रम-दिवस देखा गया। इसका कारण बॉम्बे टेक्सटाइल हड़ताल थी।

4) (क) गलत (ख) सही (ग) सही (घ) गलत (ड.) सही

बोध प्रश्न 3

1) उपभाग 32.3 पढ़िए।

2) मज़दूरी और भत्ता, बोनस, कार्मिक और छँटनी।

3) उपभाग 32.3 पढ़िए।

4) (क) गलत (ख) गलत (ग) सही (घ) सही (ड.) सही।